



मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों में नारी पराधीनता और अस्मिता की खोज

उर्मिला कुमारी

सहायक आचार्या, हिंदी विभाग, राजकीय महाविद्यालय श्रीमाधोपुर (सीकर)

सारांश

हिंदी साहित्य में मुंशी प्रेमचंद का स्थान एक ऐसे यथार्थवादी साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित है, जिन्होंने भारतीय समाज की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और नैतिक विसंगतियों को अपनी रचनाओं का विषय बनाया। उनके उपन्यासों में नारी जीवन की समस्याओं, स्त्री की पराधीनता, सामाजिक रूढ़ियों, आर्थिक निर्भरता, वैवाहिक असमानता तथा आत्मसम्मान की खोज का अत्यंत मार्मिक चित्रण मिलता है।

प्रेमचंद ने स्त्री को केवल परिवार की मर्यादा बनाए रखने वाली पात्र के रूप में प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि उसे अपनी इच्छाओं, भावनाओं, संघर्षों और स्वतंत्र व्यक्तित्व से संपन्न मनुष्य के रूप में देखने का प्रयास किया। उनके उपन्यासों में स्त्री की स्थिति तत्कालीन भारतीय समाज की पुरुषप्रधान व्यवस्था, जातिगत भेदभाव, दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, विधवा जीवन, आर्थिक विषमता और सामाजिक प्रतिष्ठा की संकीर्ण अवधारणाओं से प्रभावित दिखाई देती है। 'सेवासदन', 'निर्मला', 'गबन', 'गोदान', 'कर्मभूमि' और 'रंगभूमि' जैसे उपन्यासों के माध्यम से प्रेमचंद ने स्त्री की विवशताओं के साथ-साथ उसके आत्मसम्मान, निर्णय क्षमता और स्वतंत्र अस्तित्व की आकांक्षा को भी अभिव्यक्त किया है। प्रस्तुत शोधपत्र में प्रेमचंद के उपन्यासों के आधार पर नारी पराधीनता के सामाजिक कारणों तथा स्त्री अस्मिता की खोज का विश्लेषण किया गया है। यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि प्रेमचंद का नारी संबंधी दृष्टिकोण अपने समय की सामाजिक परिस्थितियों से जुड़ा होने के बावजूद मानवीय समानता और सामाजिक परिवर्तन की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

संकेताक्षर:- मुंशी प्रेमचंद, नारी पराधीनता, स्त्री अस्मिता, पुरुषप्रधान समाज, सामाजिक रूढ़ियाँ, आर्थिक निर्भरता, दहेज प्रथा, नारी चेतना, आत्मसम्मान, सामाजिक परिवर्तन।

प्रस्तावना

हिंदी उपन्यास साहित्य के विकास में मुंशी प्रेमचंद का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने साहित्य को मनोरंजन के सीमित उद्देश्य से बाहर निकालकर सामाजिक जीवन की वास्तविक समस्याओं से जोड़ा। उनके साहित्य में किसान, मजदूर, निम्नवर्गीय समुदाय, शोषित व्यक्ति, स्त्री और समाज के उपेक्षित वर्गों की पीड़ा को विशेष स्थान प्राप्त हुआ है। प्रेमचंद ने भारतीय समाज की उन संरचनाओं का चित्रण किया, जिनके कारण मनुष्य की स्वतंत्रता, समानता और गरिमा प्रभावित होती थी। उनके लिए साहित्य सामाजिक जीवन का प्रतिबिंब होने के साथ-साथ समाज की विसंगतियों को पहचानने और उनमें परिवर्तन की चेतना उत्पन्न करने का माध्यम भी था।

प्रेमचंद के उपन्यासों में नारी जीवन का चित्रण विशेष महत्व रखता है। तत्कालीन भारतीय समाज में स्त्री की सामाजिक स्थिति अनेक प्रकार के बंधनों से घिरी हुई थी। परिवार और विवाह की व्यवस्था में पुरुष का प्रभुत्व स्थापित था। स्त्री से आज्ञाकारिता, त्याग, सहनशीलता और पारिवारिक मर्यादा के निर्वाह की अपेक्षा की जाती थी, जबकि उसकी व्यक्तिगत इच्छाओं, भावनाओं और स्वतंत्र निर्णयों को प्रायः गौण माना जाता था। विवाह संबंधी निर्णयों में स्त्री की सहमति का अभाव, दहेज की समस्या, विधवाओं की उपेक्षा, शिक्षा के सीमित अवसर और आर्थिक परनिर्भरता उसकी पराधीनता को बनाए रखने वाले प्रमुख कारक थे।

प्रेमचंद ने इन परिस्थितियों का चित्रण करते हुए स्त्री के जीवन को केवल घरेलू समस्याओं तक सीमित नहीं रखा। उन्होंने यह दिखाया कि सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त असमानता स्त्री के व्यक्तित्व, मानसिक स्थिति और आत्मसम्मान को किस प्रकार प्रभावित करती है। उनके उपन्यासों की स्त्रियाँ कभी सामाजिक रूढ़ियों के कारण विवश होती हैं, कभी आर्थिक परिस्थितियों से संघर्ष करती हैं और कभी अपनी अस्मिता को बचाने के लिए परंपरागत मान्यताओं के विरुद्ध खड़ी दिखाई देती हैं। उनके जीवन में संघर्ष और विवशता के साथ-साथ नैतिक शक्ति, संवेदनशीलता, साहस तथा आत्मनिर्णय की आकांक्षा भी उपस्थित रहती है।

नारी पराधीनता का प्रश्न केवल स्त्री और पुरुष के व्यक्तिगत संबंधों तक सीमित नहीं है। यह सामाजिक संस्थाओं, आर्थिक संसाधनों के वितरण, शिक्षा, संपत्ति, पारिवारिक सत्ता और सामाजिक प्रतिष्ठा से भी जुड़ा हुआ है। प्रेमचंद के उपन्यास इस व्यापक संदर्भ को सामने लाते हैं। उनके यहाँ स्त्री की समस्याओं के लिए केवल किसी एक पुरुष को उत्तरदायी नहीं ठहराया गया, बल्कि उन सामाजिक परिस्थितियों की भी पड़ताल की गई है, जिनमें अन्यायपूर्ण व्यवहार सामान्य और स्वीकार्य मान लिया जाता है। यही



कारण है कि प्रेमचंद का नारी संबंधी साहित्यिक दृष्टिकोण सामाजिक यथार्थ और मानवीय संवेदना के समन्वय के रूप में सामने आता है।

नारी पराधीनता की सामाजिक पृष्ठभूमि:-

प्रेमचंद के उपन्यासों में नारी पराधीनता की जड़ें भारतीय समाज की पारंपरिक संरचना में दिखाई देती हैं। परिवार को सामाजिक जीवन की मूल इकाई माना जाता था, किंतु पारिवारिक व्यवस्था में स्त्री और पुरुष की भूमिकाएँ समान नहीं थीं। पुरुष को परिवार का मुखिया, आर्थिक निर्णयों का प्रमुख अधिकारी और सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतिनिधि समझा जाता था। इसके विपरीत स्त्री से अपेक्षा की जाती थी कि वह परिवार की इच्छाओं के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करे। उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा का निर्धारण प्रायः उसके वैवाहिक जीवन, पारिवारिक संबंधों और चरित्र संबंधी सामाजिक धारणाओं से होता था।

विवाह संस्था स्त्री की सामाजिक स्थिति निर्धारित करने वाला प्रमुख माध्यम थी। विवाह के समय आयु, आर्थिक स्थिति, परिवार की प्रतिष्ठा और दहेज जैसे प्रश्न स्त्री के भविष्य को प्रभावित करते थे। अनेक परिस्थितियों में विवाह स्त्री की स्वतंत्र इच्छा के बजाय परिवार की सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओं के आधार पर तय होता था। इस व्यवस्था में स्त्री की सहमति और भावनात्मक आवश्यकताओं को पर्याप्त महत्त्व नहीं मिलता था। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में ऐसे वैवाहिक संबंधों के परिणामों का चित्रण किया, जिनमें आयु, आर्थिक स्थिति और मानसिक अनुकूलता की उपेक्षा के कारण स्त्री का जीवन दुखपूर्ण बन जाता है।

आर्थिक निर्भरता भी स्त्री की पराधीनता का महत्वपूर्ण कारण थी। जब स्त्री के पास स्वतंत्र आय, संपत्ति अथवा रोजगार के पर्याप्त अवसर नहीं होते, तब उसके लिए अन्यायपूर्ण पारिवारिक संबंधों का विरोध करना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह अपने जीवन से संबंधित निर्णय लेने के लिए परिवार के पुरुष सदस्यों पर निर्भर रहती है। प्रेमचंद ने स्त्री की इस निर्भरता को व्यक्तिगत कमजोरी के रूप में प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि उसके पीछे मौजूद सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों को उजागर किया।

इसके अतिरिक्त सामाजिक प्रतिष्ठा और लोकापवाद का भय भी स्त्री को नियंत्रित करने का साधन बनता है। समाज स्त्री के आचरण का कठोर मूल्यांकन करता है, जबकि पुरुष के व्यवहार के प्रति अपेक्षाकृत उदार दृष्टिकोण अपनाया जाता है। इस दोहरे नैतिक मानदंड के कारण स्त्री को अपनी इच्छाओं और निर्णयों पर नियंत्रण रखना पड़ता है। प्रेमचंद के साहित्य में यह असमानता विभिन्न पात्रों के जीवन और उनके संघर्षों के माध्यम से स्पष्ट होती है।

‘सेवासदन’ में स्त्री की सामाजिक विवशता और आत्मसम्मान:- मुंशी प्रेमचंद का उपन्यास ‘सेवासदन’ नारी जीवन की सामाजिक समस्याओं को समझने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस उपन्यास की प्रमुख पात्र सुमन के जीवन के माध्यम से लेखक ने विवाह व्यवस्था, दहेज, आर्थिक असमानता और सामाजिक नैतिकता के दोहरे मानदंडों का चित्रण किया है। सुमन का जीवन इस बात को स्पष्ट करता है कि जब विवाह संबंध आर्थिक दबावों और सामाजिक प्रतिष्ठा की अपेक्षाओं पर आधारित होते हैं, तब स्त्री की भावनाओं तथा व्यक्तित्व का विकास बाधित हो सकता है।

सुमन के जीवन में उत्पन्न परिस्थितियाँ केवल व्यक्तिगत दुर्भाग्य का परिणाम नहीं हैं। उनके पीछे ऐसी सामाजिक व्यवस्था कार्य करती है, जिसमें स्त्री के भविष्य का निर्णय प्रायः परिवार की आर्थिक स्थिति और सामाजिक अपेक्षाओं के अनुसार किया जाता है। विवाह के बाद उत्पन्न असंतोष और मानसिक संघर्ष यह संकेत देते हैं कि केवल वैवाहिक संबंध में बँध जाना स्त्री के सुख, सम्मान और सुरक्षा की गारंटी नहीं है। यदि वैवाहिक जीवन में परस्पर सम्मान, संवेदनशीलता और समानता का अभाव हो, तो स्त्री का व्यक्तित्व संकटग्रस्त हो सकता है।

सुमन के चरित्र के माध्यम से प्रेमचंद सामाजिक नैतिकता के विरोधाभासों को भी सामने लाते हैं। समाज स्त्री के आचरण का निर्णय करते समय उसकी परिस्थितियों की उपेक्षा कर देता है। स्त्री के जीवन में आने वाली कठिनाइयों, आर्थिक विवशताओं और सामाजिक असुरक्षाओं को समझने के स्थान पर उसे दोषी ठहराना अधिक सरल माना जाता है। इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था स्वयं स्त्री को संकट की ओर धकेलने के बाद उसके विरुद्ध नैतिक निर्णय सुनाती है।

‘सेवासदन’ में स्त्री अस्मिता का प्रश्न सामाजिक स्वीकृति प्राप्त करने तक सीमित नहीं रहता। यह प्रश्न स्त्री की गरिमा, आत्मसम्मान और सम्मानपूर्वक जीवन जीने के अधिकार से जुड़ जाता है। सुमन का जीवन पाठक को यह सोचने के लिए प्रेरित करता है कि स्त्री के चरित्र का मूल्यांकन केवल बाहरी सामाजिक मानदंडों के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए। उसकी परिस्थितियों, इच्छाओं और संघर्षों को भी समझना आवश्यक है। इस दृष्टि से यह उपन्यास स्त्री के प्रति सहानुभूति विकसित करने के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था की आलोचना भी करता है।

‘निर्मला’ में दहेज प्रथा, अनमेल विवाह और स्त्री की पीड़ा:- ‘निर्मला’ प्रेमचंद का ऐसा उपन्यास है जिसमें दहेज प्रथा और अनमेल विवाह के कारण स्त्री जीवन में उत्पन्न होने वाली त्रासदी का मार्मिक चित्रण मिलता है। निर्मला का विवाह उसकी स्वतंत्र इच्छा और भावनात्मक आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं हो पाता। दहेज की समस्या और पारिवारिक परिस्थितियाँ उसके जीवन को इस प्रकार प्रभावित करती हैं कि वह ऐसे वैवाहिक संबंध में प्रवेश करती है, जहाँ आयु और मानसिक अनुकूलता का पर्याप्त ध्यान नहीं रखा गया है।



निर्मला के जीवन का दुखद पक्ष यह है कि उसकी व्यक्तिगत इच्छाएँ सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के सामने गौण हो जाती हैं। विवाह संस्था, जिसे सामान्यतः सुरक्षा और स्थायित्व का आधार माना जाता है, उसके लिए मानसिक तनाव और असुरक्षा का कारण बन जाती है। पति के मन में उत्पन्न संदेह और परिवार के भीतर विश्वास की कमी उसके जीवन को और अधिक कठिन बना देती है। इस प्रकार उपन्यास यह स्पष्ट करता है कि स्त्री की पराधीनता केवल विवाह से पहले ही नहीं, बल्कि विवाह के बाद भी विभिन्न रूपों में बनी रह सकती है।

निर्मला के चरित्र के माध्यम से प्रेमचंद ने यह दिखाया है कि संदेह और अविश्वास से प्रभावित पारिवारिक वातावरण स्त्री की स्वतंत्रता को सीमित कर देता है। उसे अपनी भावनाओं और व्यवहार के लिए लगातार स्पष्टीकरण देने की स्थिति में रहना पड़ता है। उसकी सहज मानवीय संवेदनाएँ भी संदेह की दृष्टि से देखी जाती हैं। ऐसी परिस्थिति में स्त्री का व्यक्तित्व स्वतंत्र रूप से विकसित नहीं हो पाता और उसका जीवन दूसरों की आशंकाओं तथा निर्णयों के अधीन हो जाता है।

इस उपन्यास में दहेज प्रथा का विरोध केवल आर्थिक शोषण की आलोचना नहीं है, बल्कि यह स्त्री को वस्तु की तरह देखने वाली मानसिकता पर भी प्रश्न उठाता है। जब विवाह को आर्थिक लेन-देन और पारिवारिक प्रतिष्ठा से जोड़ दिया जाता है, तब स्त्री की योग्यता, भावनाओं और व्यक्तित्व का महत्व कम हो जाता है। प्रेमचंद ने इस व्यवस्था के विनाशकारी परिणामों को निर्मला के जीवन के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

निर्मला का चरित्र नारी अस्मिता की खोज को एक जटिल रूप में प्रस्तुत करता है। वह हर परिस्थिति में प्रत्यक्ष विद्रोह करने वाली पात्र नहीं है, किंतु उसकी पीड़ा सामाजिक अन्याय की गंभीरता को उजागर करती है। उसका जीवन यह प्रश्न उठाता है कि क्या किसी स्त्री का मौन उसकी सहमति का प्रमाण माना जा सकता है। प्रेमचंद की दृष्टि में स्त्री की विवशता को समझना और उसके सम्मानपूर्ण जीवन के लिए अनुकूल सामाजिक परिस्थितियाँ निर्मित करना आवश्यक है।

‘गबन’ में आभूषण, सामाजिक प्रतिष्ठा और स्त्री की पहचान:-

‘गबन’ में प्रेमचंद ने मध्यवर्गीय जीवन, दिखावे, आर्थिक दबाव और सामाजिक प्रतिष्ठा की आकांक्षा का चित्रण किया है। उपन्यास की प्रमुख स्त्री पात्र जालपा के माध्यम से आभूषणों के प्रति आकर्षण, पारिवारिक संस्कारों और सामाजिक मान्यताओं के बीच संबंध को समझा जा सकता है। जालपा के लिए आभूषण केवल सजावट की वस्तु नहीं हैं, बल्कि वे उस सामाजिक वातावरण से भी जुड़े हैं जिसमें स्त्री के सौंदर्य, प्रतिष्ठा और वैवाहिक स्थिति का मूल्यांकन बाहरी वस्तुओं के आधार पर किया जाता है।

जालपा की आभूषणों के प्रति आकांक्षा को केवल व्यक्तिगत दोष मान लेना उपन्यास की सामाजिक दृष्टि को सीमित कर देगा। उसके व्यक्तित्व का निर्माण ऐसे परिवेश में हुआ है जहाँ आभूषणों को स्त्री के सम्मान और पारिवारिक समृद्धि के प्रतीक के रूप में देखा जाता है। इस कारण उसकी इच्छाओं में सामाजिक संस्कारों और व्यक्तिगत आकांक्षाओं का मिश्रण दिखाई देता है। प्रेमचंद इस स्थिति के माध्यम से बताते हैं कि समाज द्वारा निर्मित प्रतिष्ठा के मानदंड व्यक्ति के व्यवहार को गहराई से प्रभावित करते हैं।

जालपा का चरित्र उपन्यास के विकास के साथ परिवर्तन से गुजरता है। परिस्थितियों और अनुभवों के कारण उसमें जीवन के प्रति अधिक गंभीर दृष्टिकोण विकसित होता है। वह केवल बाहरी प्रतिष्ठा तक सीमित रहने वाली पात्र नहीं रहती, बल्कि संकट के समय साहस, उत्तरदायित्व और नैतिक शक्ति का परिचय देती है। इस परिवर्तन के माध्यम से स्त्री की आंतरिक क्षमता और स्वतंत्र निर्णय लेने की योग्यता सामने आती है।

‘गबन’ में नारी अस्मिता का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि स्त्री को केवल पुरुष के निर्णयों पर निर्भर रहने वाली इकाई के रूप में नहीं देखा गया। जालपा की भूमिका यह संकेत देती है कि कठिन परिस्थितियों में स्त्री परिवार और समाज के प्रति उत्तरदायित्व निभाने के साथ-साथ अपनी नैतिक शक्ति का परिचय भी दे सकती है। उसका विकास इस विचार को पुष्ट करता है कि स्त्री का व्यक्तित्व बाहरी आभूषणों और सामाजिक प्रतिष्ठा से कहीं अधिक व्यापक है।

‘गोदान’ में ग्रामीण स्त्री जीवन और आर्थिक पराधीनता:-

‘गोदान’ प्रेमचंद का महत्वपूर्ण उपन्यास है, जिसमें ग्रामीण समाज, किसान जीवन, आर्थिक शोषण, जातिगत असमानता और पारिवारिक संघर्षों का व्यापक चित्रण मिलता है। इस उपन्यास में स्त्री जीवन की समस्याएँ ग्रामीण अर्थव्यवस्था और सामाजिक संरचना से गहराई से जुड़ी हुई हैं। धनिया, झुनिया और अन्य स्त्री पात्रों के माध्यम से लेखक ने यह दिखाया है कि ग्रामीण स्त्री का संघर्ष केवल घरेलू जीवन तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह आर्थिक अभाव, सामाजिक बहिष्कार, जातिगत भेदभाव और पारिवारिक उत्तरदायित्वों से भी प्रभावित होता है।

धनिया का चरित्र प्रेमचंद की सशक्त स्त्री दृष्टि का उल्लेखनीय उदाहरण है। वह कठिन आर्थिक परिस्थितियों के बावजूद परिवार को संभालने का प्रयास करती है। उसके व्यक्तित्व में व्यावहारिक बुद्धि, साहस, स्पष्टवादिता और अन्याय का विरोध करने की क्षमता दिखाई देती है। वह केवल पति के निर्णयों का अनुसरण करने वाली स्त्री नहीं है, बल्कि अनेक अवसरों पर परिस्थितियों का स्वतंत्र मूल्यांकन करती है और अपनी बात स्पष्ट रूप से रखती है।



धनिया की सशक्तता का आधार उसकी सामाजिक स्वतंत्रता नहीं, बल्कि विपरीत परिस्थितियों में विकसित हुई जीवनानुभव से प्राप्त शक्ति है। वह आर्थिक अभाव और सामाजिक दबावों के बीच भी मानवीय संवेदना को महत्व देती है। झुनिया के प्रति उसका व्यवहार इस बात को सामने लाता है कि सामाजिक रूढ़ियों से संघर्ष करते हुए भी स्त्री करुणा और मानवीयता को बनाए रख सकती है। धनिया का चरित्र इस धारणा को चुनौती देता है कि ग्रामीण स्त्री केवल परंपराओं की निष्क्रिय अनुयायी होती है।

झुनिया के जीवन में स्त्री की असुरक्षा और सामाजिक नियंत्रण का प्रश्न विशेष रूप से उभरता है। उसके व्यक्तिगत संबंधों को समाज की प्रतिष्ठा, जातिगत मान्यताओं और नैतिक निर्णयों के आधार पर देखा जाता है। जब वह सामाजिक मानदंडों से अलग स्थिति में पहुँचती है, तो उसके सामने सामाजिक बहिष्कार और असुरक्षा की आशंका उत्पन्न होती है। इस परिस्थिति में उसके जीवन का मूल्यांकन उसकी व्यक्तिगत परिस्थितियों के आधार पर करने के बजाय सामाजिक रूढ़ियों के अनुसार किया जाता है।

‘गोदान’ में स्त्री की पराधीनता का आर्थिक पक्ष भी महत्वपूर्ण है। ग्रामीण परिवारों की निर्धनता स्त्री के श्रम और जीवन को प्रभावित करती है। घर और खेत से जुड़े कार्यों में उसकी भूमिका महत्वपूर्ण होने के बावजूद उसे प्रायः स्वतंत्र आर्थिक पहचान प्राप्त नहीं होती। उसके श्रम का मूल्य परिवार की आजीविका के लिए आवश्यक होता है, किंतु सामाजिक प्रतिष्ठा और निर्णय लेने की शक्ति में उसे समान स्थान नहीं मिलता।

इस उपन्यास में धनिया और झुनिया के चरित्र यह संकेत देते हैं कि नारी अस्मिता की खोज केवल व्यक्तिगत स्वतंत्रता का प्रश्न नहीं है। यह आर्थिक सुरक्षा, सामाजिक सम्मान, समान व्यवहार और मानवीय गरिमा से भी संबंधित है। प्रेमचंद ग्रामीण स्त्री की शक्ति को स्वीकार करते हुए उन सामाजिक परिस्थितियों की आलोचना करते हैं, जो उसकी स्वतंत्रता को सीमित करती हैं।

‘कर्मभूमि’ में नारी चेतना और सामाजिक सक्रियता:-

‘कर्मभूमि’ में प्रेमचंद ने सामाजिक परिवर्तन, राष्ट्रीय चेतना, जनसाधारण के संघर्ष और नैतिक उत्तरदायित्व के प्रश्नों को महत्व दिया है। इस उपन्यास में स्त्री की भूमिका पारिवारिक सीमाओं से आगे बढ़कर सामाजिक जीवन से जुड़ती दिखाई देती है। सुखदा का चरित्र इस संदर्भ में उल्लेखनीय है, क्योंकि उसके व्यक्तित्व में परिवर्तन के साथ सामाजिक चेतना और सार्वजनिक उत्तरदायित्व का विकास दिखाई देता है।

सुखदा का जीवन यह संकेत देता है कि स्त्री की क्षमता को केवल घरेलू कार्यों और पारिवारिक संबंधों तक सीमित नहीं किया जा सकता। जब उसे व्यापक सामाजिक परिस्थितियों से जुड़ने का अवसर मिलता है, तब उसके भीतर नेतृत्व, संगठन और निर्णय लेने की योग्यता विकसित होती है। इस प्रकार उसका चरित्र स्त्री की सामाजिक सक्रियता और आत्मविश्वास की संभावनाओं को सामने लाता है।

सुखदा के व्यक्तित्व में आने वाला परिवर्तन नारी अस्मिता की खोज का महत्वपूर्ण पक्ष है। स्त्री अपनी परिस्थितियों को समझते हुए स्वयं के प्रति दृष्टिकोण बदल सकती है और समाज में अपनी भूमिका को नए रूप में पहचान सकती है। यह परिवर्तन केवल व्यक्तिगत विकास नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना के विस्तार का भी संकेत है। प्रेमचंद के यहाँ स्त्री की सक्रियता समाज के व्यापक परिवर्तन से जुड़ती है।

‘कर्मभूमि’ की सामाजिक दृष्टि यह स्पष्ट करती है कि स्वतंत्रता का अर्थ केवल व्यक्तिगत बंधनों से मुक्ति नहीं है। वास्तविक स्वतंत्रता के लिए सार्वजनिक जीवन में भागीदारी, निर्णय लेने का अवसर और सामाजिक सम्मान भी आवश्यक हैं। स्त्री को सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय भूमिका प्रदान करना उसकी अस्मिता को स्वीकार करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

‘रंगभूमि’ में स्त्री, सत्ता और सामाजिक नैतिकता:-

‘रंगभूमि’ में प्रेमचंद ने सामाजिक असमानता, आर्थिक शक्ति, औपनिवेशिक व्यवस्था और मानवीय संघर्षों का चित्रण किया है। इस उपन्यास का व्यापक सामाजिक परिवेश यह समझने में सहायता करता है कि स्त्री की स्थिति सत्ता और सामाजिक प्रतिष्ठा की संरचनाओं से किस प्रकार प्रभावित होती है। स्त्री के व्यवहार का मूल्यांकन प्रायः समाज की प्रचलित नैतिक धारणाओं के अनुसार किया जाता है, जबकि पुरुष और प्रभावशाली वर्गों के व्यवहार के लिए अलग-अलग मानदंड अपनाए जाते हैं।

प्रेमचंद की सामाजिक दृष्टि में किसी भी व्यक्ति की मानवीय गरिमा का निर्धारण उसकी संपत्ति, प्रतिष्ठा या सामाजिक स्थिति से नहीं होना चाहिए। यह दृष्टिकोण स्त्री संबंधी प्रश्नों पर भी लागू होता है। स्त्री को परिवार की प्रतिष्ठा अथवा सामाजिक व्यवस्था के संरक्षण का साधन मानने के बजाय स्वतंत्र मानवीय व्यक्तित्व के रूप में स्वीकार करना आवश्यक है।

‘रंगभूमि’ के संदर्भ में नारी अस्मिता का प्रश्न सामाजिक सत्ता, नैतिकता और मानवीय अधिकारों के व्यापक संदर्भ में देखा जा सकता है। प्रेमचंद का साहित्य पाठक को यह विचार करने के लिए प्रेरित करता है कि समाज में प्रचलित नियम वास्तव में न्यायपूर्ण हैं या वे कुछ वर्गों और व्यक्तियों के हितों की रक्षा करते हैं। इस दृष्टि से उनकी रचनाएँ सामाजिक नैतिकता की आलोचनात्मक समीक्षा का अवसर प्रदान करती हैं।



प्रेमचंद के उपन्यासों में नारी अस्मिता की अवधारणा:-

नारी अस्मिता का अर्थ स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व, आत्मसम्मान, इच्छाओं, अधिकारों और निर्णय लेने की क्षमता की स्वीकृति से है। यह केवल सामाजिक पहचान प्राप्त करने का प्रश्न नहीं, बल्कि मनुष्य के रूप में स्त्री की समान गरिमा को स्वीकार करने से संबंधित है। प्रेमचंद के उपन्यासों में नारी अस्मिता विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होती है। कहीं यह अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के प्रति मौन पीड़ा के रूप में सामने आती है, कहीं साहस और प्रतिरोध के रूप में और कहीं सामाजिक उत्तरदायित्व निभाने की सक्रिय क्षमता के रूप में दिखाई देती है।

प्रेमचंद की स्त्री पात्रों को एक ही श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। निर्मला की विवशता, सुमन की परिस्थितिजन्य त्रासदी, जालपा का परिवर्तन, धनिया की स्पष्टवादिता और सुखदा की सामाजिक सक्रियता स्त्री जीवन के अलग-अलग पक्षों को प्रस्तुत करती हैं। इन पात्रों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री की अस्मिता का विकास उसकी व्यक्तिगत परिस्थितियों, सामाजिक स्थिति, आर्थिक संसाधनों और उपलब्ध अवसरों से प्रभावित होता है।

प्रेमचंद के साहित्य में स्त्री का प्रतिरोध हमेशा प्रत्यक्ष विद्रोह के रूप में प्रकट नहीं होता। कई बार उसका दुख, मौन, नैतिक निर्णय या अन्यायपूर्ण व्यवहार के प्रति असहमति भी सामाजिक व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न लगाती है। इस कारण उनकी स्त्री पात्रों की समीक्षा करते समय केवल यह देखना पर्याप्त नहीं है कि वे कितनी बार खुलकर विरोध करती हैं। यह समझना भी आवश्यक है कि उनके जीवन की परिस्थितियाँ उन्हें किस प्रकार सीमित करती हैं और उन सीमाओं के भीतर वे अपनी गरिमा को बचाने का प्रयास कैसे करती हैं।

नारी अस्मिता की खोज में शिक्षा और आर्थिक आत्मनिर्भरता का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। शिक्षित और आर्थिक रूप से सक्षम स्त्री के लिए अपने जीवन से संबंधित निर्णय लेने की संभावनाएँ बढ़ सकती हैं। किंतु प्रेमचंद के उपन्यास यह भी संकेत देते हैं कि केवल व्यक्तिगत योग्यता पर्याप्त नहीं है, जब तक समाज में समानता और न्यायपूर्ण व्यवहार की व्यवस्था न हो। इसलिए स्त्री की मुक्ति के लिए व्यक्तिगत परिवर्तन के साथ-साथ सामाजिक संरचनाओं में परिवर्तन भी आवश्यक है।

पुरुष प्रधान व्यवस्था की आलोचना:-

प्रेमचंद ने पुरुषप्रधान समाज की आलोचना करते हुए पारिवारिक और सामाजिक संबंधों में व्याप्त असमानता को उजागर किया। उनके उपन्यासों में पुरुष पात्र भी सामाजिक रूढ़ियों, प्रतिष्ठा की आकांक्षा और आर्थिक दबावों से प्रभावित दिखाई देते हैं। इस प्रकार लेखक की दृष्टि केवल पुरुष और स्त्री के व्यक्तिगत संघर्ष तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह उन सामाजिक मान्यताओं की पड़ताल करती है जो असमानता को जन्म देती हैं।

पुरुष प्रधान व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि स्त्री के जीवन के निर्णय लेने का अधिकार प्रायः पुरुषों के पास रहता है। विवाह, परिवार, संपत्ति और सामाजिक संबंधों के विषय में स्त्री की सहमति को पर्याप्त महत्त्व न मिलने से उसकी स्वतंत्रता सीमित हो जाती है। 'निर्मला' में संदेह और वैवाहिक असमानता तथा 'सेवासदन' में विवाह और सामाजिक प्रतिष्ठा से जुड़ी समस्याएँ इस स्थिति को स्पष्ट करती हैं।

प्रेमचंद ने यह भी दिखाया कि सामाजिक नैतिकता के नियम स्त्री और पुरुष पर समान रूप से लागू नहीं होते। स्त्री के व्यवहार को परिवार की प्रतिष्ठा से जोड़कर देखा जाता है, जबकि पुरुष के निर्णयों को कई बार सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर उचित ठहराने का प्रयास किया जाता है। इस दोहरे दृष्टिकोण की आलोचना प्रेमचंद के नारी संबंधी साहित्यिक चिंतन का महत्वपूर्ण पक्ष है। उनकी रचनाएँ यह विचार प्रस्तुत करती हैं कि स्त्री की स्वतंत्रता पुरुष के अधिकारों को समाप्त करने का प्रश्न नहीं है। इसका वास्तविक अर्थ पारस्परिक सम्मान, समानता और न्याय पर आधारित संबंधों का निर्माण है। परिवार तभी स्वस्थ सामाजिक संस्था बन सकता है, जब उसमें स्त्री और पुरुष दोनों की भावनाओं, इच्छाओं तथा निर्णयों को महत्त्व दिया जाए।

आर्थिक निर्भरता और स्त्री की स्वतंत्रता:-

प्रेमचंद के उपन्यासों में आर्थिक परिस्थितियों का स्त्री जीवन पर प्रभाव बार-बार दिखाई देता है। आर्थिक संसाधनों पर नियंत्रण सामाजिक शक्ति और निर्णय क्षमता से जुड़ा होता है। जब स्त्री के पास स्वतंत्र आय का साधन नहीं होता, तब वह अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति के लिए दूसरों पर निर्भर हो सकती है। यह निर्भरता उसे अन्यायपूर्ण परिस्थितियों में भी समझौता करने के लिए बाध्य कर सकती है।

'सेवासदन' में आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियाँ सुमन के जीवन को प्रभावित करती हैं, जबकि 'गोदान' में ग्रामीण निर्धनता स्त्री के श्रम और पारिवारिक उत्तरदायित्वों को जटिल बनाती है। 'गबन' में सामाजिक प्रतिष्ठा और उपभोग की आकांक्षा का आर्थिक जीवन से संबंध सामने आता है। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि स्त्री की स्थिति को समझने के लिए केवल पारिवारिक व्यवहार का अध्ययन पर्याप्त नहीं है, आर्थिक व्यवस्था का विश्लेषण भी आवश्यक है।

आर्थिक आत्मनिर्भरता स्त्री को अपने जीवन के निर्णय लेने की अधिक स्वतंत्रता प्रदान कर सकती है। इसके साथ शिक्षा, रोजगार, संपत्ति पर अधिकार और सामाजिक सुरक्षा भी आवश्यक हैं। प्रेमचंद के साहित्य में इन सभी आधुनिक अवधारणाओं का व्यवस्थित



सैद्धांतिक प्रतिपादन नहीं मिलता, फिर भी उनकी रचनाओं में स्त्री की आर्थिक और सामाजिक विवशताओं का जो चित्रण है, वह इन प्रश्नों की प्रासंगिकता को स्पष्ट करता है।

प्रेमचंद की नारी दृष्टि की प्रासंगिकता:-

प्रेमचंद के उपन्यासों में प्रस्तुत नारी जीवन की समस्याएँ आज भी अनेक रूपों में प्रासंगिक दिखाई देती हैं। समय के साथ शिक्षा, रोजगार, कानून और सामाजिक चेतना के क्षेत्र में परिवर्तन हुए हैं, किंतु लैंगिक असमानता, दहेज, घरेलू हिंसा, आर्थिक निर्भरता और सामाजिक प्रतिष्ठा के नाम पर स्त्री की स्वतंत्रता सीमित करने जैसी समस्याएँ पूरी तरह समाप्त नहीं हुई हैं। इस कारण प्रेमचंद की रचनाएँ समकालीन समाज के लिए भी विचारोत्तेजक बनी हुई हैं।

उनके साहित्य का महत्त्व इस बात में है कि वे स्त्री की समस्याओं को केवल व्यक्तिगत चरित्र अथवा नैतिकता के आधार पर नहीं समझते। वे सामाजिक परिस्थितियों, आर्थिक दबावों और पारिवारिक संबंधों की भूमिका को सामने लाते हैं। इससे पाठक को स्त्री की स्थिति के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण विकसित करने का अवसर मिलता है।

प्रेमचंद की रचनाएँ यह भी बताती हैं कि स्त्री को सम्मान देने का अर्थ केवल उसकी प्रशंसा करना या उसके त्याग को महिमामंडित करना नहीं है। वास्तविक सम्मान तभी संभव है, जब उसे अपने जीवन के निर्णय लेने का अवसर मिले, उसकी इच्छाओं को महत्त्व दिया जाए और उसे सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में समान भागीदारी प्राप्त हो। स्त्री को केवल त्याग, सहनशीलता और सेवा के आदर्शों में बाँध देना भी उसकी अस्मिता को सीमित कर सकता है।

इस प्रकार प्रेमचंद की नारी दृष्टि का मूल आधार मानवीय गरिमा और सामाजिक न्याय है। उनके उपन्यास स्त्री जीवन की पीड़ा को सामने लाने के साथ-साथ उन परिस्थितियों की पहचान भी करते हैं, जिनमें परिवर्तन आवश्यक है। यही विशेषता उनके साहित्य को सामाजिक यथार्थ के दस्तावेज के साथ-साथ मानवीय संवेदना का महत्त्वपूर्ण स्रोत बनाती है।

निष्कर्ष

मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों में नारी पराधीनता और अस्मिता की खोज भारतीय समाज की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संरचनाओं से गहराई से जुड़ी हुई है। उनके साहित्य में स्त्री जीवन का चित्रण केवल व्यक्तिगत दुख और पारिवारिक संघर्ष की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि यह उस व्यवस्था की आलोचना भी है, जिसमें स्त्री की इच्छाओं, अधिकारों और स्वतंत्र व्यक्तित्व को पर्याप्त मान्यता नहीं मिलती। दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, आर्थिक निर्भरता, सामाजिक प्रतिष्ठा, पुरुषप्रधान मानसिकता और नैतिकता के दोहरे मानदंड स्त्री की पराधीनता को बनाए रखने वाले प्रमुख कारकों के रूप में सामने आते हैं।

‘सेवासदन’ में सुमन का जीवन सामाजिक नैतिकता और स्त्री की गरिमा से संबंधित प्रश्न उठाता है। ‘निर्मला’ दहेज और अनमेल विवाह के विनाशकारी परिणामों को सामने लाता है। ‘गबन’ में जालपा के चरित्र के माध्यम से बाहरी प्रतिष्ठा से आगे बढ़कर नैतिक शक्ति और उत्तरदायित्व का महत्त्व स्पष्ट होता है। ‘गोदान’ में धनिया और झुनिया ग्रामीण स्त्री जीवन की जटिलताओं, आर्थिक कठिनाइयों तथा सामाजिक रूढ़ियों को अभिव्यक्त करती हैं। ‘कर्मभूमि’ में सुखदा का चरित्र स्त्री की सामाजिक सक्रियता और नेतृत्व क्षमता की संभावनाओं को सामने लाता है। इन रचनाओं का समग्र अध्ययन स्त्री जीवन के विविध पक्षों को समझने में सहायता करता है।

प्रेमचंद की स्त्री पात्र परिस्थितियों के अनुसार अलग-अलग प्रकार से संघर्ष करती हैं। कुछ पात्र सामाजिक व्यवस्था की कठोरता के कारण विवश दिखाई देती हैं, जबकि कुछ पात्र साहस, निर्णय क्षमता और सामाजिक सक्रियता का परिचय देती हैं। इन सभी के माध्यम से लेखक यह स्थापित करते हैं कि स्त्री की स्थिति को केवल उसके व्यक्तिगत व्यवहार के आधार पर नहीं समझा जा सकता। उसके जीवन को प्रभावित करने वाली सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों का विश्लेषण करना भी आवश्यक है।

संदर्भ सूची

1. प्रेमचंद, मुंशी, ‘सेवासदन’, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
2. प्रेमचंद, मुंशी, ‘निर्मला’, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
3. प्रेमचंद, मुंशी, ‘गबन’, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
4. प्रेमचंद, मुंशी, ‘गोदान’, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
5. प्रेमचंद, मुंशी, ‘कर्मभूमि’, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
6. प्रेमचंद, मुंशी, ‘रंगभूमि’, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
7. प्रेमचंद, मुंशी, ‘मानसरोवर’, विभिन्न खंड, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
8. रामविलास शर्मा, ‘प्रेमचंद और उनका युग’, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
9. अमृत राय, ‘कलम का सिपाही’, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
10. हजारीप्रसाद द्विवेदी, ‘हिंदी साहित्य की भूमिका’, वाराणसी, वाणी प्रकाशन।



संस्कृति संगम, ISSN: 3049-0111

खंड 4 अंक 2, जुलाई - दिसंबर 2026

11. रामचंद्र शुक्ल, 'हिंदी साहित्य का इतिहास', वाराणसी, नागरी प्रचारिणी सभा।
12. नामवर सिंह, 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ', नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
13. मैनेजर पांडेय, 'साहित्य और इतिहास-दृष्टि', नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन।
14. प्रभा खेतान, 'स्त्री उपेक्षिता', नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
15. मृणाल पांडेय, 'परिधि पर स्त्री', नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।